राष्ट्रपति
(President)

भारत में संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गई है। संविधान के भाग-5 के अनुच्छेद-52 से 78 तक संघीय कार्यपालिका का वर्णन किया गया है। संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल एवं महान्यायवादी सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रपति, कार्यपालिका का मात्र संवैधानिक तथा औपचारिक अध्यक्ष तथा राष्ट्र का समस्त प्रशासनिक कार्य राष्ट्रपति के नाम पर संचालित होता है। संविधान के अनुच्छेद-75(1) के अनुसार, प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। प्रधानमंत्री शासन का वास्तविक प्रधान होता है तथा उसका महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व नीति-निर्धारण और नीति का क्रियान्वयन करना है। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक दक्षता बनाए रखना, जनता और सरकार के बीच प्रभावशाली संबंध बनाना तथा सरकार का संसद के साथ समन्वय बनाए रखना भी प्रधानमंत्री की जिम्मेदारी होती है।

राष्ट्रपति (President)

राष्ट्रपति, भारत का प्रथम नागरिक होता है तथा राष्ट्रपति का पद भारतीय गणराज्य का सर्वोच्च पद होता है। संघ की कार्यपालिकीय शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है। संविधान की प्रस्तावना में **गणराज्य (Republic)** शब्द का प्रयोग इस अर्थ में किया गया है कि भारतीय संघ का प्रधान निर्वाचित राष्ट्रपति है, न कि कोई राजा। राष्ट्रपति पांच वर्ष के लिए चुना जाता है। संविधान में यह भी उल्लिखित है कि राष्ट्रपति तब तक अपने पद पर बना रहेगा, जब तक उसका उत्तराधिकारी निर्वाचित नहीं हो जाता है।

योग्यताएं (Qualifications)

संविधान के अनुच्छेद-58 के अनुसार, निम्नलिखित योग्यताएं रखने वाला व्यक्ति राष्ट्रपति पद के लिए योग्य माना जाता है, **यदि** -

- वह भारत का नागरिक हो।
- वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
- वह लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो।
- वह किसी लाभ के पद पर न हो।

राष्ट्रपति पद के लिए शर्तें (Terms of President)

अनुच्छेद-59 के अनुसार, राष्ट्रपति, संसद के किसी सदन अथवा किसी राज्य के विधान मण्डल का सदस्य नहीं होगा यदि वह किसी सदन का सदस्य है, तो उसे अपने पद का परित्याग करना होगा। साथ ही वह अपने कार्यकाल के दौरान कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा।

निर्वाचक मंडल (Electoral Committee)

अनुच्छेद-54 के अनुसार, इस निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य तथा राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य सम्मिलित होते हैं। जबकि मनोनीत सदस्य निर्वाचन में शामिल नहीं होते हैं। क्योंकि संसद में राष्ट्रपति के द्वारा सदस्यों का मनोनयन होता है तथा विधान सभा में राज्यपाल सदस्यों का मनोनयन करता है तथा राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। इसीलिए विधान सभा के मनोनीत सदस्यों को भी राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार नहीं है। निर्वाचन में राज्यों की विधान परिषद्ों के निर्वाचित सदस्य सम्मिलित नहीं होते, क्योंकि सभी राज्यों में विधान परिषदों का गठन नहीं किया गया है। परंतु 70वें संविधान संशोधन, 1992 के अनुसार, केंद्र शासित राज्य दिल्ली तथा पांडिचेरी की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य भी राष्ट्रपति चुनाव में हिस्सा लेते हैं।

राज्य विधान सभाओं के बीच आनुपातिक समानता (Proportional Equality between State Legislatures)

राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल निर्वाचित सभी सांसद तथा सभी निर्वाचित विधान सभाओं के सदस्य ही निर्वाचक मंडल में भाग लेते हैं। 28 राज्यों में विधान सभा के सदस्यों की संख्या अलग-अलग है तथा इनकी जनसंख्या भी अलग-अलग है। इसलिए राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रत्येक विधायक के मत का मूल्य अलग-अलग होता है। उत्तर प्रदेश के विधायक का मत मूल्य, गोवा के विधायक के मत मूल्य से अधिक होगा, क्योंकि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या अधिक है। अतः प्रत्येक विधायक एक मत देगा, लेकिन उसके मत का मूल्य अलग-अलग होगा। अतः राज्यों के विधायकों के मत मूल्य की गणना के लिए संविधान में **निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है** -

- किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य वही होगा, जितना कि 1,000 के गुणित उस भागफल में हों, जो राज्य की जनसंख्या (वर्ष-1971 की जनगणना के आधार पर) के उस विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संपूर्ण संख्या से भाग देने पर आए, जैसे -

$$\frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} \times \frac{1}{1000}$$

$$= \text{राज्य के प्रत्येक निर्वाचक के मतों का मूल्य}$$

- राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या एक हजार के उक्त गुणितों को गिनने के बाद यदि शेष 500 से अधिक हो, तो इसे एक मान लिया जाएगा। इस प्रकार सभी राज्य विधान सभा सदस्यों का कुल मत मूल्य लगभग 1098903 होगा।

मतगणना का आधार वर्ष (Base Year of Counting Votes)

राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए वर्ष-1971 की जनगणना का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि वर्ष-1971 के बाद दक्षिण भारत के राज्यों में जनसंख्या नियंत्रण कर लिया गया। जबकि उत्तर भारत में जनसंख्या नियंत्रित नहीं हो सकी। अतः वर्ष-2011 की जनगणना का प्रयोग करने पर उत्तर भारतीय राज्यों के विधान सभा के मत मूल्य में वृद्धि हो जाएगी और राष्ट्रपति के निर्वाचन में इनका महत्व ज्यादा हो जाएगा तथा दक्षिण भारतीय राज्यों का अवमूल्यन होगा।

विधायकों एवं सांसदों के मत मूल्य में आनुपातिक समानता (Proportional Equality in Votes Value of MLAs and MPs)

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मंडल के कुल सदस्यों की संख्या-4896 है, जिसमें विधायकों की संख्या-4120 है। अतः निर्वाचन मंडल के प्रत्येक सदस्य को एक मत देते पर राष्ट्रपति के निर्वाचन में सांसदों के मत का महत्व गौंण हो जाएगा, क्योंकि निर्वाचित सांसदों की कुल संख्या केवल 776 है। इसलिए विधायकों एवं सांसदों के बीच भी मत मूल्यों के समानुपात की स्थापना की जाती है, जिसके लिए संविधान में निम्नलिखित सूत्र दिया गया है -

$$\frac{\text{समस्त राज्यों की विधान सभाओं के कुल सदस्यों के प्राप्त मतों की संख्याओं का योग}}{\text{संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

= संसद के प्रत्येक सदन के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों का मूल्य।

निर्वाचन प्रक्रिया (Election Process)

निर्वाचन प्रक्रिया का विस्तृत उल्लेख राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1951 एवं 1952 द्वारा निर्धारित किए गए हैं। राष्ट्रपति के निर्वाचन में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के द्वारा होता है। राष्ट्रपति के निर्वाचन में चुनाव चिह्न का भी प्रयोग नहीं होता। इसलिए राष्ट्रपति सैद्धांतिक रूप में किसी दल विशेष का सदस्य नहीं होता, क्योंकि उससे निष्पक्ष रूप में कार्य करने की अपेक्षा होती है। वह भारत का राष्ट्रपति है, न कि किसी दल का प्रधान। राष्ट्रपति चुनाव में लोक सभा महासचिव तथा राज्य सभा महासचिव क्रमिक रूप में निर्वाचन अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की **एकल संक्रमणीय मत पद्धति** तथा गुप्त मतदान के द्वारा तथा राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल द्वारा संपन्न होता है। राष्ट्रपति के चुनावों में प्रत्येक सदस्य वरीयता के आधार पर मतदान करता है और इस आधार पर प्रत्येक सदस्य मतपत्र में सभी उम्मीदवारों के सामने प्रथम व द्वितीय वरीयता अंकित

करता है। मतपत्र सांसदों के लिए हरे रंग के होते हैं तथा विधान सभा सदस्यों के लिए पीले रंग के होते हैं और विधान सभा सदस्यों को अपने राज्यों में भी मत देने का अधिकार होता है।

मतदान प्रक्रिया एवं मतों की गिनती (Voting process and counting of votes)

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मंडल में शामिल प्रत्येक प्रत्याशी को एक मत देने का अधिकार होता है, परंतु वह अपना मत सभी प्रत्याशियों के समक्ष प्राथमिकता के रूप में व्यक्त करता है। वह केवल अपनी पहली प्राथमिकता का मत ही दे सकता है और निर्वाचन के पश्चात् पहली प्राथमिकता के मतों की गणना होती है और यदि किसी प्रत्याशी को पहले प्राथमिकता के मतगणना में मतों का पूर्ण कोटा प्राप्त हो गया, तो उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा। निर्वाचन में उसी उम्मीदवार को विजयी घोषित किया जाता है, जिसे कुल वैध मतों का निर्धारित कोटा प्राप्त हो। कोटे को निम्नलिखित सूत्र के द्वारा निकाला जाता है। उदाहरण के लिए, माना कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में कुल 1,000 वैध मत प्रदान किए गए हैं-

$$\text{मतों का कोटा} = \frac{\text{कुल वैध मत}}{1+1} + 1 = \frac{1000}{2} + 1 = 501$$

प्रथम वरीयता की गणना : (1,000)

A - 450

B - 300

C - 250

यदि किसी भी प्रत्याशी को पहली प्राथमिकता की मतगणना में पूर्ण कोटा प्राप्त नहीं हुआ, तब द्वितीय प्राथमिकता के मतों की गणना की जाएगी। यह उल्लेखनीय है कि सभी सदस्यों ने अपने मत प्राथमिकता के रूप में दिए हैं। इसलिए द्वितीय वरीयता की गणना के लिए उस उम्मीदवार के मतों को जिसे पहली प्राथमिकता के सबसे कम मत प्राप्त हुए हैं, जैसा कि ऊपर (C-250) उम्मीवार को पहली वरीयता का सबसे कम मत प्राप्त हुए हैं। उसकी दूसरी वरीयता के मतों को अन्य उम्मीदवारों के बीच संक्रमित कर दिया जाएगा, जिन लोगों ने उम्मीदवार C को अपनी पहली वरीयता का मत दिया था, उन मतों को A और B के लिए संक्रमित किया जाएगा और इन संक्रमित मतों को A और B के मतों में जोड़ दिया जाएगा, जिससे किसी एक उम्मीदवार को मतों का पूर्ण कोटा प्राप्त हो जाएगा।

द्वितीय वरीयता की गणना : मतों का संक्रमण

A. 450 +100 = 550

B. 300 +150 = 450

अत: A उम्मीदवार को मतों का पूर्ण कोटा प्राप्त हो गया और वह निर्वाचित घोषित हो जाएगा, क्योंकि 501 मतों का कोटा प्राप्त करना आवश्यक था, जबकि A प्रत्याशी को 550 मत प्राप्त हो गए। वर्ष-1969 में भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन में द्वितीय वरीयता के मतों की गणना की गई थी, जिसमें तत्कालीन निर्दलीय उम्मीदवार बी. बी. गिरि चुनाव जीत गए थे।

राष्ट्रपति चुनाव से संबंधित विवाद (Controversy Related to Presidential Election)

राष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1951 के अंतर्गत् यह उल्लिखित किया गया है कि राष्ट्रपति निर्वाचन में भाग लेने वाले प्रत्याशी ही राष्ट्रपति निर्वाचन की वैधता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दे सकते हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन चुनाव आयोग द्वारा संपन्न कराया जाता है तथा इससे संबंधित सभी विवाद केवल उच्चतम न्यायालय के अधीन हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के केवल निर्वाचित सदस्यों और राज्य विधान सभा के केवल निर्वाचित सदस्यों के द्वारा होता है। यदि चुनाव के दौरान कोई विधान सभा भंग हो, तो चुनाव स्थगित नहीं होगा। लेकिन उच्चतम न्यायालय द्वारा यदि किसी राष्ट्रपति के निर्वाचन को अवैध घोषित कर दिया गया है, तो राष्ट्रपति के द्वारा किए गए कार्य अवैध नहीं होंगे।

राष्ट्रपति का अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Election of President)

भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन अखिल भारतीय रूप में होता है तथा उसका निर्वाचन देश के आम जनता के द्वारा नहीं, बल्कि सांसदों एवं विधायकों के द्वारा होता है। इसलिए राष्ट्रपति के निर्वाचन को अप्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जाता है। भारतीय राष्ट्रपति संसदीय व्यवस्था में संवैधानिक प्रधान हैं, जबकि संसदीय शासन का वास्तविक प्रधान प्रधानमंत्री होता

है और प्रधानमंत्री सीधे जनता के द्वारा सांसद के रूप में निर्वाचित होता है। इसीलिए राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष नहीं रखा गया। प्रत्यक्ष निर्वाचन से राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संघर्ष की संभावना बढ़ जाएगी और वह प्रधानमंत्री के अतिरिक्त शक्ति का दूसरा केन्द्र बन जाता। राष्ट्रपति का निर्वाचन दलों के चुनाव चिह्न के आधार पर नहीं होता, बल्कि चुनाव के बैलेट में उम्मीदवारों के केवल नाम अंकित होते हैं। अत: राष्ट्रपति का पद दलीय विभाजन से मुक्त रखा गया है, क्योंकि राष्ट्रपति किसी दल का सदस्य नहीं, बल्कि भारतीय सरकार का संवैधानिक प्रधान होता है तथा उससे शासन प्रणाली में तटस्थता की उम्मीद की जाती है, जिसका अभिप्राय है कि वह किसी भी दल के लिए पक्षपात नहीं करेगा। वास्तविक रूप में राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने वाले उम्मीदवार भले ही किसी दल के सदस्य रहे हों, परंतु राष्ट्रपति बनने के बाद उनसे दलीय आधार पर कार्य करने की अपेक्षा नहीं है। इसलिए राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप में नहीं होता है।

प्रस्तावक एवं अनुमोदक (Proposers and Seconders)

राष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1951 में यह उल्लिखित है कि राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के निर्वाचन हेतु नामांकन करने के लिए कम से कम 50 सदस्य प्रस्तावक और 50 सदस्य अनुमोदक के रूप में होने आवश्यक हैं। राष्ट्रपति चुनाव में भाग लेने वाला उम्मीदवार 15,000 रुपए जमानत राशि के रूप में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया में जमा करता है। ऐसे उम्मीदवार जिनको कुल डाले गए मतों का 1/6 भाग नहीं मिलता, तो उनकी यह जमानत राशि जब्त हो जाती है।

कार्यकाल (Tenure)

राष्ट्रपति पद ग्रहण करने की तिथि से 5 वर्ष तक अपने पद पर बना रहता है तथा वह पुन: निर्वाचित होने के लिए योग्य है। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद दो बार राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे। अत: राष्ट्रपति का कार्यकाल सीमित नहीं है संविधान में यह भी उल्लिखित है कि उसके उत्तराधिकारी के निर्वाचन तक वह अपने पद पर बना रहेगा।

पद की शपथ (Oath of Post)

राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अथवा उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम् न्यायाधीश शपथ दिलाता है, (अनुच्छेद-60) और राष्ट्रपति के द्वारा अपनी पूरी क्षमता से संविधान के संरक्षण, रक्षा तथा बचाव की शपथ ली जाती है। राष्ट्रपति भारत की जनता के कल्याण और उनकी सेवा के लिए शपथ लेता है। यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति केवल पद की शपथ लेता है, गोपनीयता की नहीं। राष्ट्रपति संविधान की रक्षा और संरक्षण की शपथ लेता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति की शक्तियां केवल नाम मात्र की नहीं हैं, बल्कि वह संविधान की रक्षा के लिए संवैधानिक कदम उठा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के अन्य पदाधिकारियों के शपथ का प्रावधान तीसरी अनुसूची में है। जबकि राष्ट्रपति के शपथ का प्रावधान अनुच्छेद-60 में वर्णित है।

कार्यवाहक राष्ट्रपति

उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद निम्नलिखित परिस्थितियों में ग्रहण कर सकता है -

- पांच वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने पर।
- राष्ट्रपति की मृत्यु होने पर।
- महाभियोग के द्वारा हटाए जाने पर।
- राष्ट्रपति द्वारा स्वयं पद त्यागने पर।
- राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को अवैध घोषित किए जाने पर।
- राष्ट्रपति अपना कार्य संपादित करने में असमर्थ है।
- उपराष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति पद के कार्यों के निर्वहन के समय यदि मृत्यु हो जाए या अन्य किसी कारण से उन्हें अपने पद से हटना पड़े।

राष्ट्रपति की उपलब्धियां

अनुच्छेद-59(3)(4) में राष्ट्रपति की उपलब्धियों और भत्तों से संबंधित प्रावधान का वर्णन किया गया है। वर्तमान समय में राष्ट्रपति का वेतन 11 सितंबर, 2008 को 1.5 लाख रुपए मासिक निर्धारित किया गया है तथा राष्ट्रपति

को वे सभी भत्ते व विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जो समय-समय पर संसद निर्धारित करती है। कार्यकाल के दौरान राष्ट्रपति के वेतन व भत्ते कम नहीं किए जा सकते। राष्ट्रपति बिना किराया दिए सरकारी आवास का उपयोग करता है तथा अवकाश ग्रहण कर लेने के पश्चात् पूर्व राष्ट्रपति को पेंशन राशि के अलावा सरकारी खर्चे पर भ्रमण एवं ऑफिस चलाने के लिए सचिवालय जैसी सुविधाएं भी दी जाती हैं और पद छोड़ने के बाद राष्ट्रपति को उसके वेतन का 50 प्रतिशत पेंशन दी जाएगी।

राष्ट्रपति को प्राप्त विशेषाधिकार

भारतीय संविधान का मूल आधार विधि के समक्ष समानता है, जिसका अभिप्राय है कि किसी व्यक्ति की पद और प्रतिष्ठा कुछ भी क्यों न हो, उस पर समान विधि लागू होगी? परंतु राष्ट्रपति और राज्यपाल को विधि के समक्ष समानता से छूट दी गयी है, (अनुच्छेद-361)। राष्ट्रपति अपनी शक्तियों और कार्यालय के कर्त्तव्यों का निष्पादन करते रहने के लिए किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होंगे तथा उनके पद पर रहने के दौरान उनके विरुद्ध किसी भी प्रकार की आपराधिक कार्यवाही आरंभ नहीं की जाएगी और न ही इसे बनाया रखा जाएगा। राष्ट्रपति को अपने कार्यकाल के दौरान किसी भी न्यायपालिका के द्वारा हिरासत में रखने अथवा जेल में रखने का आदेश भी नहीं दिया जाएगा। राष्ट्रपति के द्वारा व्यक्तिगत रूप में किए गए कार्यों के विरुद्ध सिविल कार्यवाही आरंभ की जा सकती है, परंतु इसके पहले आवेदन कर्ता को अपना नाम, निवास स्थान तथा राष्ट्रपति के विरुद्ध कार्यवाही के कारण का विवरण 2 महीने पूर्व प्रस्तुत करना होगा।

राष्ट्रपति की शक्तियां एवं कार्य

संवैधानिक प्रावधान के अनुसार राष्ट्रपति में समूची कार्यपालिकीय शक्तियां निहित होती हैं तथा संघ सरकार के सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किए जाते हैं। राष्ट्रपति, राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान होता है, जो कि शक्ति का नहीं, बल्कि प्रभाव का प्रयोग करता है। भारत के राष्ट्रपति को संविधान के प्रावधानों के अनुसार **दो प्रकार की शक्तियां प्राप्त हैं** -

1. सामान्य शक्तियां। (General Powers)
2. आपातकालीन शक्तियां। (Emergency Powers)

1. सामान्य शक्तियां (General Powers)

इसके अंतर्गत् राष्ट्रपति निम्नलिखित शक्तियां धारण करता है -

1. कार्यपालिकीय शक्तियां

संघ की समूची कार्यपालिकीय शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होती हैं, (अनुच्छेद-53)। वह तीनों सेनाओं का कमांडर भी होता है तथा भारत सरकार के सभी कार्य राष्ट्रपति के द्वारा संपन्न किए जाते हैं। राष्ट्रपति की सबसे महत्वपूर्ण कार्यपालिकीय शक्ति प्रधानमंत्री की नियुक्ति है, (अनुच्छेद-75(1)) तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति के द्वारा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भी की जाती है। मंत्री व्यक्तिगत रूप में राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होता है, (अनुच्छेद-75(2)) लेकिन मंत्रिपरिषद् के सदस्य सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं, (अनुच्छेद-75(3))। राष्ट्रपति के द्वारा मंत्रियों को अपने विभागों के कार्य भी आवंटित किए जाते हैं, (अनुच्छेद-77)। संघ सरकार के सभी पदाधिकारियों, जिसमें उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष, निर्वाचन आयुक्तों तथा दो या दो से अधिक राज्यों के लिए स्थापित लोक सेवा आयोग के अध्यक्षों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है तथा विभिन्न आयोगों के अध्यक्ष की नियुक्ति भी करता है। राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, नियंत्रक महालेखा परीक्षक तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त को अपने पद से तभी हटाएगा, जब संसद विशेष बहुमत के द्वारा प्रस्ताव पारित करे। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य तथा राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य को उच्चतम न्यायालय की अनुशंसा के आधार पर ही पद से हटाया जा सकता है। अत: जिन पदाधिकारियों को राष्ट्रपति सीधे अपने पद से नहीं हटा सकता, वे पदाधिकारी राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत तक कार्य नहीं करते हैं।

2. विधायी शक्तियां

संसदीय शासन में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान तथा कार्यपालिका के सदस्य संसद के भाग होते हैं। इसलिए संसदीय शासन में कार्यपालिका और विधायिका के बीच समन्वय और सामंजस्य होता है। अत: राष्ट्रपति को संविधान में

विधायी शक्तियां प्राप्त हैं। वर्ष के प्रथम सत्र में राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को संबोधित करता है तथा नव-निर्वाचित लोक सभा के बाद होने वाले संसद के प्रथम संयुक्त अधिवेशन को भी संबोधित करता है। राष्ट्रपति के द्वारा संसद को संदेश भेजना, संसद की बैठक बुलाना तथा संसद के सत्र समाप्त करना एवं लोक सभा का विघटन भी किया जाता है। राष्ट्रपति, लोक सभा में दो ऐंग्लो-इंडियन समुदाय के व्यक्ति को मनोनीत भी करता है, तो वहीं राज्य सभा में साहित्य, विज्ञान, कला एवं समाज सेवा से जुड़े हुए 12 सदस्यों को भी मनोनीत करता है। भारत सरकार के द्वारा निर्मित विधि पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होते हैं, मंत्रियों के हस्ताक्षर नहीं। राष्ट्रपति को संसद के द्वारा पारित किसी विधि पर वीटो करने की शक्ति प्राप्त है तथा संसद के सत्र में न होने के दौरान राष्ट्रपति संघ सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर अध्यादेश भी जारी कर सकता है।

- **राष्ट्रपति की वीटो शक्ति**

संविधान में **वीटो** शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि इसका प्रयोग व्यावहारिक रूप में होता है। अनुच्छेद-111 के अनुसार, लोक सभा एवं राज्य सभा के द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रपति विधेयक पर अनुमति दे सकता है अथवा अनुमति नहीं देगा या पुनर्विचार के लिए भेज सकता है, जिसे लोकप्रिय रूप में **वीटो** कहा जाता है। **राष्ट्रपति की वीटो शक्ति निम्नलिखित हैं** -

(i) निरपेक्ष वीटो

जब राष्ट्रपति किसी विधेयक पर अनुमति न दें। भारत में निरपेक्ष वीटो का प्रयोग अभी तक केवल एक बार ही किया गया है। निरपेक्ष वीटो का प्रयोग राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने **पेप्सू** (The Patiala and East Punjab States Union, (PEPSU)) विधेयक पर किया था।

(ii) निलंबनकारी वीटो

जब राष्ट्रपति किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेज दें। वर्ष-2006 में सांसदों के लाभ के पद संबंधी विधेयक पर राष्ट्रपति ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के द्वारा पुनर्विचार के लिए सरकार के पास भेज दिया गया तथा इसी विधेयक को दोबारा भेजे जाने पर राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर किया था। राष्ट्रपति के. आर. नारायणन द्वारा संघ सरकार के उत्तर प्रदेश और बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की अनुशंसा को संघ सरकार के पास पुनर्विचार के लिए भेजा गया था।

(iii) पॉकेट वीटो

जब राष्ट्रपति किसी विधेयक पर कोई कार्यवाही न करें। संविधान में यह उल्लिखित नहीं है कि राष्ट्रपति किसी विधेयक पर कितने समय में अनुमति प्रदान करेगा। इसलिए किसी भी विधेयक पर अनुमति प्रदान करने में राष्ट्रपति विलंब कर सकता है। संविधान द्वारा राष्ट्रपति को किसी विधेयक पर अनुमति देने या इनकार करने या उसे वापस लौटाने के संबंध में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। समय सीमा के अभाव में भारत का राष्ट्रपति जेबी वीटो का इस्तेमाल कर सकता है। उदाहरण के लिए, वर्ष-1986 में संसद ने **भारतीय डाकघर विधेयक** पारित किया था, जिसके कुछ प्रावधान प्रेस की स्वतंत्रता के विरुद्ध होने के कारण उसकी कटु आलोचना हुई, जिसके कारण इस विधेयक पर राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने न तो अनुमति दी और न ही अनुमति देने से इनकार ही किया।

- **अध्यादेश जारी करने की शक्ति**

अध्यादेश, विधि का पर्याय है। अध्यादेश, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल (अनुच्छेद-123 एवं 213) के द्वारा ही जारी किया जाता है। राष्ट्रपति संघ सूची और समवर्ती सूची से संबंधित विषयों पर अध्यादेश जारी करते हैं। यदि किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन हो अथवा राष्ट्रीय आपातकाल लगा हो, तो राष्ट्रपति राज्य सूची पर भी अध्यादेश जारी कर सकते हैं। भारतीय संविधान में अध्यादेश का प्रावधान **भारत शासन अधिनियम, 1935** से लिया गया है। ऐसी शक्ति संसार में किसी भी राष्ट्राध्यक्ष को प्राप्त नहीं है। अनुच्छेद-123 के अनुसार, **अध्यादेश जारी करने की निम्नलिखित परिस्थितियां होती हैं** -

- यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि विधि के निर्माण की तत्काल आवश्यकता है।
- सरकार के समक्ष आकस्मिक परिस्थिति विद्यमान हों।
- संसद के दोनों सदन अथवा एक सदन सत्र में न हों।

संविधान में यह उल्लिखित है कि अध्यादेश जारी करने के बाद संसद की अगली बैठक से 6 सप्ताह की अवधि के अंदर यदि संसद इसे अनुमोदित न करे, तो अध्यादेश स्वत: ही समाप्त हो जाएगा अथवा राष्ट्रपति इसे कभी भी वापस ले सकता है।

(i) दुरुपयोग

जिन विधेयकों पर लोक सभा में गतिरोध उत्पन्न हो गया हो, उन पर लोक सभा सत्र की समाप्ति के बाद अध्यादेश जारी कर दिया गया। जैसा कि यूपीए-2 की सरकार द्वारा खाद्य सुरक्षा विधेयक के संदर्भ में हुआ। वर्तमान सरकार (बीजेपी की सरकार) के द्वारा नृपेन्द्र मिश्रा को मुख्य सचिव के रूप में नियुक्ति के लिए अध्यादेश जारी कर दिया गया। अनेकों बार ऐसे उदाहरण देखे गए हैं कि सदन की शुरुआत के दो दिन पहले अध्यादेश जारी कर दिया गया। सर्वाधिक आपत्तिजनक विषय यह है कि अध्यादेशों को लगातार पुनर्जीवित रखा गया और बार-बार जारी किया गया। जैसे-भूमि अधिग्रहण अध्यादेश, 2014, कुछ राज्य सरकारों के द्वारा अध्यादेशों को 10 साल से ज्यादा समय तक बार-बार जारी किया गया, जिसे आलोचक अध्यादेशराज की संज्ञा देते हैं, जो संसद की लोकतांत्रिक भावना के प्रतिकूल है।

(ii) अध्यादेश और विधि के बीच संबंध

जब तकनीकी रूप में अध्यादेश और विधि एक-दूसरे के पर्याय हैं, तो अध्यादेश जारी करने पर इतनी आपत्ति क्यों? जब अध्यादेश जारी करने का प्रावधान संवैधानिक है, तो इस पर प्रश्न क्यों उठाया जाता है? फिर आलोचकों के अनुसार, अध्यादेश विधि-निर्माण का विकल्प नहीं हो सकता, क्योंकि विधि-निर्माण के दौरान सदन में व्यापक चर्चा कर विधेयक के गुणों एवं दोषों को उजागर किया जाता है तथा सभी को अपना मत व्यक्त करने का अधिकार होता है, जो अवसर अध्यादेश में नहीं मिल पाता। अध्यादेश के समर्थकों का मानना है कि वर्तमान में विधि-निर्माण पर संसद में कोई चर्चा भी नहीं हो रही है और संसद के कार्यों को लगातार बाधित किया जा रहा है। जब सदन की बैठक और चर्चा भी नहीं हो रही है, तो अध्यादेश और विधि के बीच का अंतर समाप्त हो जाता है। इसलिए अध्यादेश व विधि में कोई अंतर ही नहीं रहा। वर्तमान सरकार के समक्ष एक नई चुनौती उत्पन्न हो गई, क्योंकि लोक सभा में उसे बहुमत प्राप्त है, जबकि राज्य सभा में अल्पमत में है। ऐसी परिस्थिति में राज्य सभा द्वारा जानबूझकर विधेयकों को रोकना संसदीय भावना के अनुकूल नहीं है।

(iii) न्यायपालिका का दृष्टिकोण

अध्यादेशों का न्यायिक पुनरावलोकन भी होता है, परंतु न्यायपालिका यह नहीं देखती है कि अध्यादेश जारी करने की आकस्मिक परिस्थिति विद्यमान थी अथवा नहीं। न्यायपालिका केवल इस बात का परीक्षण करती है कि अध्यादेश जारी करने में सरकार ने अपनी शक्ति का उल्लंघन तो नहीं किया है। संघ सरकार के द्वारा संघ सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर ही अध्यादेश जारी हो सकता है। जबकि राज्य सरकार के द्वारा राज्य सूची के विषय पर अध्यादेश जारी होता है और अध्यादेश के द्वारा संविधान संशोधन नहीं हो सकता। उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्ष-1987 में बाधवा वाद में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि अध्यादेशों को पुन: जारी करना असंवैधानिक है। अध्यादेश एक संवैधानिक व्यवस्था है, जिसे आकस्मिक परिस्थितियों में जारी किया जाता है। वर्तमान में अध्यादेशों का दुरुपयोग किया जा रहा है, जिसके लिए सत्ता पक्ष और विपक्ष समान रूप से उत्तरदायी हैं। अध्यादेशों का बार-बार जारी होना संसदीय शासन की भावना के प्रतिकूल है।

(iv) अध्यादेश एवं शक्ति पृथक्करण

शक्ति पृथक्करण, भारतीय संविधान का आधारभूत ढांचा है। जिसके अनुसार विधायिका के द्वारा विधि का निर्माण किया जाता है तथा कार्यपालिका विधि का क्रियान्वयन करती है। अध्यादेश, मूलत: विधि है। इसलिए सरकार के द्वारा बार-बार अध्यादेश जारी करना अथवा अध्यादेश को लगातार बनाए रखना विधायिका की शक्ति को सीमित करना है। संविधान में अध्यादेश का प्रावधान आवश्यक परिस्थितियों के लिए किया गया है, परंतु कार्यपालिका के द्वारा इसका सामान्य प्रयोग संविधान में निहित शक्ति पृथक्करण की भावना के प्रतिकूल है।

3. वित्तीय शक्तियां

भारतीय संविधान में वित्तीय शक्तियों के संदर्भ में नीति-निर्माण के अधिकार कार्यपालिका को सौंपे गए हैं और कार्यपालिकीय शक्ति का संवैधानिक प्रधान राष्ट्रपति है। लोक सभा में धन विधेयक प्रस्तुत करने से पहले राष्ट्रपति की

पूर्व अनुमति आवश्यक है। धन विधेयक पारित होने के बाद उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होते हैं। प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरंभ में राष्ट्रपति के द्वारा वार्षिक वित्तीय विवरण लोक सभा में वित्त मंत्री के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जिसे लोकप्रिय भाषा में **बजट** कहा जाता है। सरकार के वित्तीय खर्च पर निगरानी रखने का कार्य भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) का है और इसके द्वारा अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाती है। राष्ट्रपति इसे संसद के समक्ष रखवाता है, जिस पर संसद के द्वारा विचार-विमर्श होता है। भारतीय सरकार के प्रमुख वित्तीय कोष भारत की संचित निधि, लोक लेखा निधि तथा आकस्मिक निधि हैं तथा भारत के लोक लेखा निधि एवं आकस्मिक निधि से पैसे निकालने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है।

4. न्यायिक शक्तियां

अनुच्छेद-72 के अनुसार, राष्ट्रपति निम्नलिखित को क्षमादान देने की शक्ति रखता है। संघ सूची या संघ शासन से संबंधित सभी विषयों पर क्षमा दे सकता है। कोर्ट मॉर्शल अपराधी को भी क्षमादान दे सकता है तथा मृत्युदण्ड से पूर्ण क्षमादान की शक्ति केवल राष्ट्रपति को है।

(i) क्षमादान (Pardon)

इसके द्वारा अभियुक्त पर सभी प्रकार के अपराध के आरोप एवं दंड समाप्त कर दिए जाते हैं।

(ii) लघुकरण (Commutation)

एक प्रकार के दण्ड के स्थान पर दूसरा दण्ड दे दिया जाता है, जिसमें दण्ड की प्रकृति परिवर्तित हो जाती है। जैसे कि मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर देना।

(iii) परिहार (Remission)

केवल दण्ड की अवधि को कम कर दिया जाता है, लेकिन दण्ड की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे-1 वर्ष की सजा को 6 महीने की सजा में परिवर्तित कर देना।

(iv) निलंबन (Respite)

जब किसी विशेष परिस्थिति को देखते हुए अथवा किसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए दोषी व्यक्ति को निर्धारित सजा के बजाए, कम सजा प्रदान करना।

(v) विराम (Reprieve)

क्षमादान के लिए जब राष्ट्रपति के समक्ष अनुरोध किया जाता है, तो उस अवधि में सजा स्थगित कर दी जाती है, जिसे विराम कहा जाता है। यह मृत्युदण्ड के मामलों में लागू होता है।

क्षमादान तथा न्यायपालिका

मारूराम वाद में न्यायपालिका ने पहले ही निर्धारित कर दिया है कि यदि निर्णय अतर्कसंगत तथा मनमाने रूप में किया गया हो, तो अनुच्छेद-72 के अंतर्गत् प्रयुक्त शक्तियों का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है। **केहर सिंह वाद में** न्यायपालिका ने निम्न आधार रखे, जो क्षमादान की शक्ति के संदर्भ में हैं। क्षमादान की शक्ति राष्ट्रपति के विवेकाधीन है। इस शक्ति का प्रयोग सरकार की सलाह पर किया जाएगा। राष्ट्रपति न्यायालय से अलग मत रख सकता है, लेकिन राष्ट्रपति के समक्ष क्षमादान के लिए मौखिक सुनवाई नहीं होती। न्यायपालिका ने यह भी स्पष्ट किया है कि किसी भी व्यक्ति को मनमानी तरीके से क्षमा नहीं किया जाएगा और किसी भी व्यक्ति को राजनीतिक या संकीर्ण, धार्मिक या जातीय आधारों पर क्षमा नहीं किया जा सकता। क्षमादान राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्ति है, जो उसकी संवैधानिक शक्ति है, व्यक्तिगत शक्ति नहीं। यदि किसी व्यक्ति की दया याचिका 6 वर्षों से ज्यादा अवधि से लंबित है, तो उसके मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में बदल दिया जाएगा। अत: किसी व्यक्ति को क्षमा करने के आधार में उसके परिवार पर पड़ने वाले प्रभाव या समाज पर पड़ने वाले व्यापक प्रभाव को ध्यान में रखा जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय एवं मृत्युदण्ड

18 फरवरी, 2014 को उच्चतम न्यायालय के द्वारा दिए गए एक ऐतिहासिक निर्णय में मृत्युदण्ड की सजा प्राप्त राजीव गांधी की हत्या के आरोप में **मुरूगन (Murugan), संथान (Santhan) एवं पेरारिवलन (Perarivalan)** की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय का तर्क है कि इन्हें मृत्युदण्ड देने में अनावश्यक और अनापेक्षित विलंब किया गया तथा उच्चतम न्यायालय ने इनकी दया याचिका में हुए विलंब के कारण इनकी सजा को

आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया। न्यायपालिका के अनुसार, किसी व्यक्ति को दोहरी सजा नहीं दी जा सकती और जीवन के अधिकार के उल्लंघन के लिए प्रक्रिया भी तार्किक और निष्पक्ष होनी चाहिए, जिसका अमानवीय प्रभाव नहीं होना चाहिए। न्यायपालिका के अनुसार, मृत्युदण्ड देने में विलंब प्रताड़ना की भांति है, जो अनुच्छेद-21 में वर्णित जीवन के अधिकार के विरुद्ध है। जनवरी, 2014 में उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदण्ड प्राप्त 15 अभियुक्तों की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया था तथा न्यायपालिका ने कहा कि अभियुक्तों की सजा का परिवर्तन अलग-अलग मामलों में अलग-अलग निर्धारित किया जाएगा। इसलिए सभी मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियों की सजा को स्वाभाविक रूप में आजीवन कारावास में परिवर्तित नहीं किया जाएगा। राजीव गांधी के हत्यारों की दया याचिका वर्ष-2000 में तमिलनाडु के राज्यपाल के द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इसके बाद वर्ष-2000 में इनकी क्षमा याचिका राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत की गई, जिसे राष्ट्रपति ने वर्ष-2011 में अस्वीकृत कर दिया।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद तमिलनाडु सरकार के द्वारा इन तीनों अभियुक्तों को जेल से मुक्त करने का आदेश दे दिया गया, क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि इन अपराधियों की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जा रहा है, जो राज्य सरकार की क्षमा के अधीन होगा। भारतीय आपराधिक प्रक्रिया, 1973 की धारा-432 में राज्य सरकार को क्षमादान की शक्ति है। तमिलनाडु सरकार के इस निर्णय के विरोध में केन्द्र सरकार के द्वारा उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की गयी तथा उच्चतम न्यायालय ने इनकी रिहाई पर रोक लगा दी। केन्द्र सरकार का तर्क था कि इन अपराधियों को केन्द्रीय अधिनियम के अंतर्गत् दण्डित किया गया है, जिसे क्षमा करने का अधिकार केन्द्र सरकार को है अथवा राज्य सरकार, केन्द्र सरकार की सहमति से इन्हें क्षमादान दे सकती है। इन अपराधियों को हथियार अधिनियम, विस्फोटक अधिनियम, विदेशी अधिनियम तथा पासपोर्ट के अधिनियम द्वारा दण्डित किया गया था, जो संघ सूची के विषय हैं।

5. सैनिक शक्तियां

भारतीय राष्ट्रपति केवल कार्यपालिकीय शक्तियों का ही प्रधान नहीं है, बल्कि उसे युद्ध एवं संधि की घोषणा करने का अधिकार भी है। भारत के द्वारा संपन्न सभी अंतर्राष्ट्रीय संधियां राष्ट्रपति के नाम से संपादित होती हैं। राष्ट्रपति भारत की थल सेना, जल सेना तथा वायु सेना का कमांडर भी होता है। भारत में स्थापित केन्द्रीय सैनिक बल भी राष्ट्रपति के अधीन कार्य करते हैं।

6. कूटनीतिक शक्तियां

राष्ट्रपति, भारत का प्रथम नागरिक है। वह भारत में नियुक्त सभी विदेशी राजदूतों से परिचय प्राप्त करता है तथा भारत के सभी राजदूतों की नियुक्ति करता है और कॉमनवेल्थ देशों में उच्चायुक्तों की भी नियुक्ति करता है तथा मित्र देशों के साथ भारत के संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए वह अनेक देशों की यात्राएं भी करता है।

2. आपातकालीन शक्तियां (Emergency Powers)

संविधान के **भाग-18** (अनुच्छेद-352 से 360 तक) में आपातकाल की स्थिति उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति को संकटकाल से निपटने के लिए विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए हैं। राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति से निपटने हेतु **राष्ट्रपति को निम्नलिखित आपातकालीन शक्तियां प्रदान की गई हैं** -

(i) राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद-352) - राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो जाए कि युद्ध, वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की शांति या व्यवस्था के ऊपर खतरा है अथवा वास्तविक रूप में युद्ध छिड़ गया हो, तब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा हो सकती है, (अनुच्छेद-352) तथा 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 के द्वारा आंतरिक अशांति के बजाए, **सशस्त्र विद्रोह** शब्द को जोड़ दिया गया और यह भी लिखा गया कि राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा मंत्रिमंडल के लिखित सलाह पर ही संभव है। वर्ष-1962 और वर्ष-1971 में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा वाह्य आक्रमण के आधार पर हुई थी, जबकि वर्ष-1975 के आपातकाल की घोषणा आंतरिक अशांति के आधार पर की गई थी।

(ii) राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता (अनुच्छेद-356)

यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट या किसी अन्य प्रकार से यह संतुष्टि हो जाए कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं कि राज्य का शासन संवैधानिक तंत्र के अनुसार संचालित नहीं हो रहा हो, तब राष्ट्रपति राज्य की समूची

शक्तियों को अपने हाथ में ले सकता है। यह उल्लेखनीय है कि राज्य की विधान सभा पहले निलंबित की जाती है तथा संसद में दोनों सदनों के प्रस्ताव पारित होने के बाद राज्य विधान सभा को भंग किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय ने बोम्मई वाद (1994) में यह स्पष्ट रूप में कहा कि संवैधानिक तंत्र की विफलता का वस्तुनिष्ठ आधार होना चाहिए। यह केवल राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के निर्णय का विषय नहीं है, क्योंकि यदि इसका असंवैधानिक प्रयोग किया गया, तो न्यायपालिका भंग विधान सभा को भी पुनर्जीवित कर सकती है। भारत में 100 से ज्यादा बार अनुच्छेद-356 का प्रयोग हुआ है, जिसमें कई अवसरों पर इसका दुरुपयोग भी किया गया है।

(iii) वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद-360)

यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत या उसके किसी भाग में आर्थिक साख अथवा वित्तीय स्थायित्व को खतरा है, तो वह वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। वित्तीय आपातकाल के प्रभाव निम्नलिखित हैं। जैसे-संघ तथा राज्य के किसी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कटौती की जा सकती है, जिसमें उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन व भत्तों में कटौती भी शामिल हैं। वित्तीय आपातकाल के दौरान संघ एवं राज्यों के बीच करों का विभाजन भी स्थगित हो जाता है। अभी तक वित्तीय आपातकाल की घोषणा भारत में नहीं हुई है।

आपातकालीन शक्तियों की आलोचना

आलोचकों के अनुसार, आपातकाल का प्रावधान भारतीय संघीय व्यवस्था के विरुद्ध है, क्योंकि इससे संघीय शासन, एकात्मक शासन रूप में कार्य करने लगता है। आपातकाल के आधार पर ही आलोचकों ने कहा कि भारतीय संविधान मूलतः एकात्मक है, जिसमें संघात्मक शासन के कुछ गौंण लक्षण विद्यमान हैं। यह राज्यों की स्वायत्तता के विरुद्ध है, क्योंकि राज्य को संविधान में प्राप्त शक्तियां निरर्थक बन जाती हैं। राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान व्यक्ति के मूल अधिकारों को भी स्थगित कर दिया जाता है, जो एक लोकतांत्रिक देश के लिए अनुचित है। कुछ आधारों पर आपातकाल का बचाव भी किया जा सकता है। आपातकाल का प्रावधान सामान्य प्रावधान नहीं है, बल्कि यह एक आपवादिक स्थिति है, जिसका यदा-कदा ही प्रयोग किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यूरोप के कई लोकतांत्रिक देशों में भी आपातकाल का प्रयोग किया गया था। भारत में वित्तीय आपातकाल का प्रयोग आज तक नहीं किया गया। इसलिए संविधान सभा में डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि आपातकाल का प्रावधान एक कड़वी दवाई की भांति हैं, जिसका प्रयोग केवल अंतिम स्थिति में किया जाएगा, जब अन्य विकल्प मौजूद न हों। आपातकाल की घोषणा के बाद इसके समय को बढ़ाने के लिए संसद के समर्थन की आवश्यकता होती है। इसलिए कार्यपालिका के द्वारा आपातकालीन शक्तियों का दुरुपयोग नहीं हो सकता और वर्ष-1975 में राष्ट्रीय आपातकाल की शक्तियों के दुरुपयोग के बाद इसके समर्थन के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है तथा उच्चतम न्यायालय के बोम्मई वाद के निर्णय के बाद राष्ट्रपति शासन के दुरुपयोग पर भी प्रभावी प्रतिबंध लग गया है। वर्तमान में क्षेत्रीय दल अत्यधिक शक्तिशाली होते जा रहे हैं, जिससे इसके दुरुपयोग की संभावनाएं न्यूनतम होती जा रही हैं।

राष्ट्रपति की सक्रियता

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रधान के रूप में स्वीकार किया गया है, परंतु व्यावहारिक रूप में राष्ट्रपति शासन के नैतिक प्रधान के रूप में भी कार्य करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रपति का पद धारण करने वाले डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन का व्यक्तित्व अत्यधिक प्रभावशाली था। इसलिए उपरोक्त राष्ट्रपतियों ने शासन पर अपनी राजनैतिक और नैतिक प्रभाव का प्रयोग किया। इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के पश्चात् उन्होंने ऐसे व्यक्तियों को राष्ट्रपति के रूप में नियुक्त किया, जो उनके प्रति निष्ठावान थे और इंदिरा गांधी के व्यक्तिगत समर्थन के कारण राष्ट्रपति बने, जिनमें फखरूद्दीन अली अहमद, वी. वी. गिरि तथा ज्ञानी जैल सिंह प्रमुख थे। इस दौर में राष्ट्रपतियों के प्रभाव में कमी आई। वर्ष-1990 के बाद संघ में गठबंधन के सरकारों का दौर शुरू हुआ। इसलिए राष्ट्रपति के निर्वाचन में किसी एक दल का निर्णायक प्रभाव नहीं रहा। इसलिए राष्ट्रपति का चुनाव अब प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर नहीं था, बल्कि राष्ट्रपति चुनाव विभिन्न आम दलों की सहमति के आधार पर किया गया। जैसे-डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, प्रतिभा देवी सिंह पाटिल और प्रणव मुखर्जी के नाम उल्लेखनीय हैं। गठबंधन सरकारों के इस दौर में राष्ट्रपति के पद के प्रभावों में वृद्धि हुई है और राष्ट्रपति ने अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रभावी प्रयोग किया, जो उन्हें व्यावहारिक

रूप में उपलब्ध हैं। राष्ट्रपति के. आर. नारायणन के कार्यकाल को राष्ट्रपति की सक्रियता का काल कहा गया, तो वहीं डॉ. कलाम ने राष्ट्रपति भवन को आम लोगों के लिए सुलभ बना दिया।

राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान

संविधान में संसदीय शासन प्रणाली का प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति शासन का संवैधानिक प्रधान है, जबकि प्रधानमंत्री शासन का वास्तविक प्रधान है। संविधान में राष्ट्रपति के लिए वर्णित सभी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग प्रधानमंत्री के द्वारा किया जाता है। इसलिए संविधान में यह उल्लिखित है कि संघ शासन की समूची कार्यपालिकीय शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होंगी, (अनुच्छेद-53)। राष्ट्रपति को सलाह एवं सहायता देने के लिए मंत्रिपरिषद् का निर्माण किया जाएगा, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह एवं सहायाता के अनुसार कार्य करेगा, (अनुच्छेद-74(1))। संविधान में किसी भी ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं है, जब राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की अनुपस्थिति में कार्य करें। शासन की वास्तविक शक्तियां मंत्रालयों में निहित होती हैं, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। राष्ट्रपति किसी भी मंत्रालय का प्रधान नहीं होता। इसलिए राष्ट्रपति वास्तविक रूप में संवैधानिक प्रधान है, परंतु उसे रबर स्टैम्प कहना उचित नहीं है। राष्ट्रपति एकमात्र संवैधानिक पदाधिकारी हैं, जिसका निर्वाचन अखिल भारतीय रूप में होता है। राष्ट्रपति संविधान की रक्षा एवं उसके संरक्षण की शपथ लेता है और 44वें संविधान संशोधन, 1978 के द्वारा राष्ट्रपति को किसी भी विधेयक को संसद के पुनर्विचार के लिए भेजने की शक्ति प्राप्त है। वर्ष-1986 में पहली बार राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह के द्वारा डाकघर संशोधन विधेयक पर पॉकेट वीटो का प्रयोग किया गया था तथा राष्ट्रपति के. आर. नारायणन के द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति की अनुशंसा को रोक दिया गया था तथा राष्ट्रपति के द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के एक सदस्य को भी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति का आग्रह किया गया था, जिसे सरकार के द्वारा मान लिया गया।

इंदिरा गांधी ने 24वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया कि राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर वीटो का प्रयोग नहीं करेगा तथा 42वें संविधान संशोधन के द्वारा यह स्पष्ट उल्लिखित किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् की सलाह एवं सहायता के आधार पर कार्य करेगा। संविधान, राष्ट्रपति को कोई स्वविवेक की शक्ति प्रदान नहीं करता है, परंतु व्यवहार में राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में अपने स्वविवेक का प्रयोग करता है, जिसका अभिप्राय है कि वह मंत्रिपरिषद् की **सलाह और सहायता के बिना कार्य करेगा** -

- जब प्रधानमंत्री की अचानक मृत्यु हो जाए, तो वह अपने विवेक से नए प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है।
- जब सरकार अल्पमत में हो जाए तथा लोक सभा में अपना विश्वास खो दे, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य नहीं करेगा, बल्कि अपने स्वविवेक के अनुसार कार्य करेगा
- यदि सरकार बनाने के लिए किसी दल के पास स्पष्ट बहुमत न हो, तो ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रपति स्वविवेक से किसी दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करते हैं। व्यावहारिक रूप में राष्ट्रपति द्वारा वर्ष-1996 के बाद से सबसे बड़े दल के स्थान पर सबसे बड़े गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है।
- किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेजने के मामले में राष्ट्रपति स्वविवेक का प्रयोग करते हैं।
- यदि मंत्रिमण्डल सदन में विश्वास मत सिद्ध न कर सके, तो राष्ट्रपति लोक सभा को विघटित करने में स्वविवेक का प्रयोग करते हैं।

पदमुक्ति (महाभियोग की प्रक्रिया)

संविधान के उल्लंघन (Violation of the Constitution) के आधार पर महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया राष्ट्रपति के ऊपर चलाई जाती है, (अनुच्छेद-61)। महाभियोग, एक अर्द्ध-न्यायिक प्रक्रिया है। महाभियोग प्रक्रिया के अंतर्गत् सबसे पहले संसद का कोई सदन राष्ट्रपति पर **संविधान के उल्लंघन** का आरोप लगाता है। राष्ट्रपति पर आरोप लगाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है, **जो निम्नलिखित हैं** -

- सदन द्वारा लगाया गया आरोप एक संकल्प (Resolution) के रूप में होना चाहिए।
- राष्ट्रपति को कम से कम 14 दिनों की पूर्व लिखित सूचना देने के बाद संकल्प को सदन द्वारा प्रस्तावित करना चाहिए।

- जिस सदन द्वारा प्रस्ताव लाया जा रहा है, उस सदन के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों द्वारा संकल्प पर हस्ताक्षर होना चाहिए।
- जिस सदन में संकल्प प्रस्तावित किया गया है, उस सदन के कम से कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत द्वारा ऐसा संकल्प पारित किया जाना चाहिए।

एक सदन में उपरोक्त प्रक्रिया से पारित प्रस्ताव को दूसरे सदन में भेजा जाता है, तो दूसरा सदन राष्ट्रपति पर लगाए गए आरोपों की जांच करता है या करवाता है। दूसरे सदन की जांच प्रक्रिया के दौरान राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह स्वयं उपस्थित होकर अथवा अपने प्रतिनिधि के माध्यम से अपना पक्ष रख सकता है। यदि दूसरे सदन में भी राष्ट्रपति पर लगाए गए आरोप सिद्ध हो जाते हैं और दूसरा सदन भी अपने दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से महाभियोग प्रस्ताव पास कर देता है, तो संकल्प पारित होने की तिथि से राष्ट्रपति अपने पद से हट जाता है।

भारत का महान्यायवादी (अनुच्छेद-76)

भारत का महान्यायवादी पेशे से अधिवक्ता होता है। संविधान में यह उल्लिखित है कि महान्यायवादी की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होगी। महान्यायवादी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए योग्यता रखने वाला होना चाहिए। यह राष्ट्रपति के इच्छानुसार (प्रसाद पर्यंत) अपना पद धारण करेगा। महान्यायवादी के वेतन व भत्तों का निर्धारण राष्ट्रपति के द्वारा ही किया जाएगा। संसदीय विधि के द्वारा न्यायालयों में केस के अनुसार तथा इनकी उपस्थिति को ध्यान में रखते हुए इनके पारिश्रमिक (वेतन इत्यादि) का निर्धारण किया जाता है। सामान्यत: महान्यायवादी का कार्यकाल सरकार की कार्यकाल से निर्धारित होता है। इसलिए संविधान में महान्यायवादी का कोई निश्चित कार्यकाल वर्णित नहीं है तथा सरकार के परिवर्तन के साथ महान्यायवादी का भी परिवर्तन हो जाता है। महान्यायवादी को सहायता प्रदान करने के लिए दो सॉलीसिटर जनरल तथा अनेक सहायक सॉलीसिटर जनरल को नियुक्त किया जाता है। दो सॉलिसिटर जनरल की नियुक्ति सामान्यत: तीन वर्षों के लिए और अन्य सहायक सॉलिसिटर जनरल की नियुक्ति होती है। दोनों महान्यायवादी को सहायता प्रदान करते हैं। सॉलिसिटर जनरल के पद का उल्लेख संविधान में नहीं है, बल्कि संसदीय विधि में उल्लिखित है और विधि मंत्रालय के द्वारा इन्हें नियुक्त किया जाता है। महान्यायवादी अपनी निजी वकालत भी जारी रख सकता है, परंतु उसके निजी वकालत पर अनेक प्रतिबंध लग जाते हैं और वह किसी ऐसे मामले में किसी पक्ष का बचाव नहीं करेगा, जिसमें भारत सरकार एक पक्ष हो।

भारत का महान्यायवादी भारत सरकार को विधि के संबंध में परामर्श देने वाला सबसे बड़ा अधिकारी होता है, (अनुच्छेद-76)। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों में वह भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करता है तथा राष्ट्रपति के द्वारा जब कोई विषय उच्चतम न्यायालय के परामर्श के लिए सौंपा जाता है, (अनुच्छेद-143) तो इसके पहले महान्यायवादी की सलाह ली जाती है। भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों में लंबित मामले, जो भारत सरकार से संबंधित हैं, उनका बचाव महान्यायवादी के द्वारा ही किया जाता है। उदाहरण के लिए, उच्चतम न्यायालय के द्वारा न्यायिक नियुक्ति आयोग की संवैधानिकता पर विचार किया जा रहा है और सरकार की ओर से महान्यायवादी आयोग की स्थापना का बचाव कर रहे हैं। अत: सरकार प्रत्येक वैधानिक और संवैधानिक मामलों पर महान्यायवादी से परामर्श लेती है। महान्यायवादी को संसद के दोनों सदनों में भी बोलने का अधिकार दिया गया है, परंतु इसे सदन में मतदान का अधिकार नहीं है।

KHAN SIR

उपराष्ट्रपति
(Vice President)

भारतीय संविधान में उपराष्ट्रपति पद के किसी भी कार्य का उल्लेख नहीं किया गया है। भारत के संसदीय शासन में संवैधानिक प्रधान राष्ट्रपति तथा शक्तियों का वास्तविक प्रधान प्रधानमंत्री हैं। इसलिए उपराष्ट्रपति का पद स्वयं में महत्वहीन प्रतीत होता है, जिसके लिए कोई कार्य आवंटित करना कठिन है। भारतीय संविधान निर्माता इंग्लैण्ड की संसदीय व्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित थे, परंतु भारतीय संविधान पर अमेरिका की अध्यक्षीय शासन प्रणाली का भी प्रभाव है। भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन का तरीका अमेरिकी राष्ट्रपति से अलग है, परंतु निर्वाचन का प्रावधान अमेरिका से प्रभावित है। अमेरिकी संविधान में उपराष्ट्रपति पद का प्रावधान है। अतः भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी उपराष्ट्रपति पद का निर्माण किया है, जो सामान्यतः संसदीय शासन के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है।

उपराष्ट्रपति की योग्यताएं

- वह भारत का नागरिक हो।
- 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- राज्य सभा सदस्य बनने की योग्यताएं रखता हो।

निर्वाचन प्रक्रिया

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचक मण्डल द्वारा होगा, (अनुच्छेद-66(1))। निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के अंतर्गत् गुप्त मतदान द्वारा होगा।

प्रस्तावक एवं अनुमोदक

उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को नामांकन करने के लिए कम से कम 20 सदस्य प्रस्तावक के रूप में एवं 20 सदस्य अनुमोदक के रूप में होने आवश्यक हैं। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया में 15,000 रुपये की जमानत राशि जमा करना उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए भी आवश्यक है।

कार्यकाल

उपराष्ट्रपति का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है तथा उसे राज्य सभा के तत्कालीन सदस्यों के बहुमत के प्रस्ताव द्वारा पद से हटाया जा सकता है, जिससे लोक सभा सहमत हो। वह इस कार्यकाल से पहले अपने पद से त्यागपत्र भी दे सकता है। उपराष्ट्रपति को पुनर्निर्वाचित होने की शक्ति संविधान से प्राप्त है। वर्ष-1957 में डॉ. राधाकृष्णन उपराष्ट्रपति पद के लिए दोबारा निर्वाचित हुए थे। इसके बाद हामिद अंसारी को दोबारा उपराष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित किया गया।

उपराष्ट्रपति का पद मुक्त होना

उपराष्ट्रपति अपने निर्धारित कार्यकाल 5 वर्ष के पहले दो आधारों पर पद मुक्त हो सकता है-**प्रथम,** वह राष्ट्रपति को संबोधित अपने त्यागपत्र द्वारा पद छोड़ सकता है एवं **द्वितीय,** राज्य सभा के सदस्यों द्वारा उपराष्ट्रपति को पद से हटाने वाला प्रस्ताव राज्य सभा में लाया जाए, **जिसके निम्नलिखित आधार हैं**- उपराष्ट्रपति को हटाने से संबंधित संकल्प राज्य सभा में प्रस्तुत करने के पहले कम से कम 14 दिन पूर्व इसकी सूचना उपराष्ट्रपति को देना आवश्यक है। उपराष्ट्रपति को हटाए जाने वाला संकल्प राज्य सभा में रखा जा सकता है तथा इस संकल्प को राज्य सभा के तत्कालीन सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा पारित किया जाना आवश्यक है और राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प लोक सभा में भेजा जाता है। यह आवश्यक है कि लोक सभा इस प्रस्ताव को साधारण बहुमत से पारित करे। लोक सभा द्वारा उपराष्ट्रपति को हटाए जाने वाले संकल्प का समर्थन मिलते ही उपराष्ट्रपति अपने पद से हट जाता है।

वेतन व भत्ते

संविधान में उपराष्ट्रपति की उपलब्धियों के बारे में कोई व्यवस्था नहीं है। उपराष्ट्रपति को वेतन व भत्ते तथा अन्य सुविधाएं राज्य सभा के सभापति के रूप में ही मिलता है। वर्तमान में उपराष्ट्रपति को 1.25 लाख रुपये वेतन प्रतिमाह मिलता है।

उपराष्ट्रपति की शक्तियां एवं कार्य

अनुच्छेद-64 और 65 के अंतर्गत् उपराष्ट्रपति के कार्यों का वर्णन किया गया है। संविधान में उपराष्ट्रपति के किसी भी कार्य का उल्लेख नहीं है। वह राज्य सभा का पदेन सभापति होता है तथा उसे राज्य सभा के पदेन सभापति के रूप में वेतन एवं भत्ते भी प्राप्त होते हैं, उपराष्ट्रपति के रूप में नहीं। **उपराष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में राष्ट्रपति के पद पर कार्य कर सकता है** -

- राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाने पर, (अनुच्छेद-65(1))।
- राष्ट्रपति के त्यागपत्र दे देने पर।
- महाभियोग या अन्य किसी प्रकार से राष्ट्रपति के हटाए जाने पर।
- अन्य किसी कारण से उत्पन्न असमर्थता की स्थिति में, जैसे-बीमारी या अनुपस्थिति की स्थिति में।

कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में

संविधान में यह उल्लिखित नहीं है कि राष्ट्रपति किस प्रकार अपने कार्य करने में समर्थ नहीं होगा, परंतु डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की वर्ष-1960 में सोवियत संघ की 15 दिनों की यात्रा के दौरान उनका कार्य उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन के द्वारा संपादित किया गया था। राष्ट्रपति यह निर्धारित कर सकता है कि कब वह अपने कार्यों को करने में असमर्थ है और किस समय वह पुनः अपने कार्य संपादित करना चाहता है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों के पद रिक्त होने के बाद राष्ट्रपति के कार्यों का संपादन भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के द्वारा किया जाएगा। वर्ष-1969 में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन की मृत्यु हो गयी और उपराष्ट्रपति वी. वी. गिरि राष्ट्रपति के कार्यों का निर्वहन कर रहे थे, परंतु नए राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने के लिए उन्होंने उपराष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र दे दिया। परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायतुल्ला के द्वारा राष्ट्रपति के कार्यों का संपादन किया गया।

राज्य सभा के सभापति के रूप में

उपराष्ट्रपति के संविधान में वर्णित कार्य राज्य सभा के सभापति के रूप में है। उपराष्ट्रपति, राज्य सभा का सदस्य नहीं होता। इसलिए उसे राज्य सभा में मतदान करने का अधिकार प्राप्त नहीं है, बल्कि वह उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित होने के कारण राज्य सभा का सभापति होता है, इसलिए उसे राज्य सभा का पदेन सभापति कहा जाता है। राज्य सभा की कार्यवाही का संचालन सभापति का दायित्व है तथा वह राज्य सभा के कार्यवाही के दौरान अपने मत का प्रयोग नहीं करता, बल्कि निर्णायक मत का प्रयोग करता है, जिसका अभिप्राय है कि यदि राज्य सभा में किसी मुद्दे पर सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच होने वाले मतदान बराबर हो जाएं, तो वह अंतिम मत का प्रयोग करेगा, जिससे निर्णय लिया जा सके।

अलंकारिक प्रधान

उपराष्ट्रपति को किसी प्रकार की संवैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है। इसलिए उपराष्ट्रपति उन समारोहों में भाग लेता है, जहां किसी कारण से राष्ट्रपति की भागीदारी संभव न हो। उपराष्ट्रपति उन विदेशी राज्यों की यात्रा भी करता है, जिनके साथ भारत के संबंध अत्यधिक मित्रतापूर्ण हैं। विश्वविद्यालय में होने वाले समारोह तथा अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वह सरकार का प्रतिनिधित्व करता है।

.....

प्रधानमंत्री
(Prime Minister)

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गई है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति संसदीय शासन का संवैधानिक प्रधान है, जिसके नाम से संघ का शासन संचालित होता है। जबकि प्रधानमंत्री शासन का प्रशासनिक मुखिया होता है, जो शक्तियों का वास्तविक प्रयोग करता है। भारतीय संविधान में प्रधानमंत्री की शक्तियों का किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है, बल्कि राष्ट्रपति की शक्तियों का उल्लेख है। इसलिए व्यावहारिक रूप में प्रधानमंत्री के द्वारा राष्ट्रपति की शक्तियों का ही प्रयोग किया जाता है।

परंपराओं पर आधारित

भारत में संसदीय शासन ब्रिटेन के संसदीय शासन से अपनाया गया है, जो संसदीय परंपराओं के आधार पर संचालित होता है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री की शक्तियां लिखित नहीं हैं, बल्कि संसदीय परंपराओं पर आधारित हैं। इसी प्रकार भारतीय प्रधानमंत्री की शक्तियां भी संसदीय परंपराओं पर आधारित हैं। इसके अनुसार प्रधानमंत्री, मंत्रियों के विभागों का आवंटन तथा उसमें फेरबदल भी कर सकता है तथा वह मंत्रिमंडल की बैठक की अध्यक्षता करता है। प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में प्रधानमंत्री ही निर्धारित करता है कि मंत्रिमंडल का कौन सा सदस्य मंत्रिमंडल की बैठक की अध्यक्षता करेगा। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमंडल के समक्ष विचार के लिए एजेंडे का निर्माण करता है। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति एवं मंत्रिमंडल के मध्य संपर्क की कड़ी के रूप में कार्य करता है। प्रधानमंत्री, लोक सभा का नेता होता है तथा वह समकक्षों में प्रधान होता है, जिसका अभिप्राय है कि वह मंत्रियों के समान होते हुए भी मंत्रिपरिषद् का नेता होता है। मंत्रिपरिषद् में किसी मंत्री के मृत्यु के पश्चात् मंत्रिपरिषद् बना रहता है। जबकि प्रधानमंत्री की मृत्यु के बाद समूचा मंत्रिपरिषद् विघटित हो जाता है और नए मंत्रिपरिषद् के निर्माण की आवश्यकता होती है।

नीति-निर्माता के रूप में भूमिका

शासन की वास्तविक शक्तियां मंत्रालयों में निहित होती हैं और प्रधानमंत्री, कार्मिक मंत्रालय का प्रधान होता है तथा परमाणु ऊर्जा विभाग एवं महासागरीय विभाग भी प्रधानमंत्री के अंतर्गत् होते हैं। प्रधानमंत्री अन्य किसी भी मंत्रालय को अपने नियंत्रण में रख सकता है। उदाहरण के लिए, भारत के पहले प्रधानमंत्री नेहरू ने विदेश मंत्रालय को सदैव अपने पास रखा। यदि कोई मंत्रालय किसी अन्य मंत्री को नहीं सौंपा गया है, तो यह प्रधानमंत्री की निगरानी में होगा। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री सभी मंत्रालयों को निर्देश दे सकता है तथा मंत्रालयों के बीच समन्वय भी कर सकता है। इसीलिए प्रधानमंत्री को समकक्षों में प्रथम माना जाता है। प्रधानमंत्री नीति आयोग का अध्यक्ष व अंतर्राज्यीय परिषद् का भी अध्यक्ष होता है। इसलिए प्रधानमंत्री देश के विकास के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं रक्षा संबंधी नीतियों का निर्माता भी है और प्रधानमंत्री के द्वारा महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समझौते भी किए जाते हैं।

प्रधानमंत्री की राजनीतिक शक्ति

लोकतंत्र में जनता की इच्छाओं का सर्वाधिक महत्व होता है तथा लोक सभा के द्वारा जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व किया जाता है और प्रधानमंत्री, लोक सभा का नेता होता है। भारत में लोक सभा के चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दल भागीदारी करते हैं और जिस दल को लोक सभा का बहुमत प्राप्त होता है उसी दल का मुखिया प्रधानमंत्री बनता है। इसलिए प्रधानमंत्री समूचे देश की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करता है। सैद्धांतिक रूप में लोक सभा के द्वारा प्रधानमंत्री का चयन किया जाता है, परंतु व्यावहारिक रूप में राजनीतिक दलों के द्वारा प्रधानमंत्री को लोक सभा चुनाव से पहले ही प्रधानमंत्री के उम्मीदवार के रूप में घोषित कर दिया जाता है। इंदिरा गांधी, राजीव गांधी को पहले ही प्रधानमंत्री

पद के दावेदार के रूप में घोषित कर दिया गया था। जबकि 16वीं लोक सभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी को निर्वाचन से पहले ही भारतीय जनता पार्टी के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में घोषित कर दिया गया। इसलिए प्रधानमंत्री राजनीतिक रूप में अत्यधिक शक्तिशाली बन जाता है।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति

संविधान के अनुसार, प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है (अनुच्छेद-75(1)) और भारतीय लोकतंत्र के आरंभिक वर्षों में लोक सभा के सबसे बड़े दल के नेता के रूप में प्रधानमंत्री को नियुक्त किया गया। पहले प्रधानमंत्री नेहरू के निधन के बाद मंत्रिमंडल के सबसे वरिष्ठ नेता गुलजारी लाल नंदा को कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया गया तथा लाल बहादुर शास्त्री के निधन के बाद पुनः गुलजारी लाल नंदा को प्रधानमंत्री बनाया गया, लेकिन बाद में इस परंपरा का निर्वहन नहीं किया गया। वर्ष-1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी को कार्यवाहक प्रधानमंत्री बनाया गया, जबकि राजीव गांधी तत्कालीन समय में मंत्रिपरिषद् के सदस्य भी नहीं थे।

वर्ष-1989 में संपन्न लोक सभा का चुनाव अप्रत्याशित था, जिसमें किसी भी एक दल को लोक सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए प्रधानमंत्री की नियुक्ति का कार्य जटिल हो गया। वर्ष-1996 में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने लोक सभा में सबसे बड़े दल के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद के लिए आमंत्रित किया। अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय जनता पार्टी के नेता थे, जिसे लोक सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं था और लोक सभा में अटल बिहारी वाजपेयी बहुमत सिद्ध नहीं कर सके। परिणामस्वरूप गठबंधन सरकारों के दौर में राष्ट्रपति के द्वारा गठबंधन के सहयोगियों के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया गया। संविधान में केवल यह उल्लिखित है कि राष्ट्रपति के द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाएगी, जबकि व्यावहारिक रूप में लोक सभा में बहुमत दल के नेता अथवा गठबंधन दल के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है।

प्रधानमंत्री राज्य सभा से

संविधान में यह स्पष्ट उल्लिखित नहीं है कि प्रधानमंत्री को किस सदन का सदस्य होना चाहिए। इंदिरा गांधी वर्ष-1966 में जब पहली बार प्रधानमंत्री बनी थीं, तो वे राज्य सभा की सदस्या थीं, लेकिन बाद में वे लोक सभा चुनाव में भागीदारी करके प्रधानमंत्री बनीं। वर्ष-1990 के बाद संघ में निर्मित होने वाले गठबंधन सरकारों के दौर में वर्ष-1996 में देवगौड़ा प्रधानमंत्री बनने के बाद राज्य सभा के सदस्य बने। इसके बाद इन्द्र कुमार गुजराल भी राज्य सभा के सदस्य तथा डॉ. मनमोहन सिंह भी प्रधानमंत्री बनने के दौरान राज्य सभा के सदस्य थे। अतः संविधान में प्रधानमंत्री किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है, परंतु संसदीय परंपराओं के अनुसार उसे लोक सभा का सदस्य होना चाहिए।

प्रधानमंत्री का शपथ ग्रहण

संविधान की तीसरी अनुसूची में संघीय मंत्रियों के शपथ और गोपनीयता का प्रावधान है। अतः तीसरी अनुसूची में प्रधानमंत्री के लिए अलग से शपथ का प्रावधान नहीं है, बल्कि मंत्रियों के पद की शपथ और गोपनीयता का प्रावधान प्रधानमंत्री के लिए भी लागू होता है। प्रधानमंत्री के द्वारा संविधान के प्रति पूर्ण आस्था और निष्ठा की शपथ ली जाती है तथा प्रधानमंत्री भारत की संप्रभुता और अखण्डता को बनाए रखने की शपथ लेता है और मंत्री के रूप में अपने कर्त्तव्यों को आस्था और पूर्ण निष्ठा से संपादित करने की शपथ लेता है। प्रधानमंत्री के द्वारा यह भी शपथ लिया जाता है कि वह सभी लोगों के साथ संविधान और विधि के अनुसार उचित व्यवहार करेगा और बिना किसी भय, असद्भावना, लगाव अथवा पक्षपात रहित कार्य करेगा।

इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री के लिए गोपनीयता की शपथ का भी प्रावधान है। प्रधानमंत्री के द्वारा यह कहा जाता है कि उसके समक्ष लायी गयी किसी जानकारी को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किसी को संप्रेषित नहीं किया जाएगा और किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह को इसकी जानकारी नहीं देगा। प्रधानमंत्री के कर्त्तव्यों और कार्यों के संपादन के दौरान यदि आवश्यक हो, तो वह कोई सूचना किसी को संप्रेषित कर सकता है। पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के ऊपर गोपनीयता को भंग करने का आरोप लगाया गया। आलोचकों ने तो यहां तक कहा कि डॉ. मनमोहन सिंह के द्वारा प्रधानमंत्री कार्यालय की महत्वपूर्ण और गोपनीय सूचनाओं को कांग्रेस की अध्यक्षा सोनिया गांधी को संप्रेषित किया गया, यद्यपि प्रधानमंत्री के द्वारा इसका खण्डन किया गया।

मंत्रियों की नियुक्ति

भारतीय संविधान में मंत्रिपरिषद् का उल्लेख किया गया है। संविधान के अनुच्छेद-74(1) में यह स्पष्ट कहा गया है कि राष्ट्रपति को सलाह एवं सहायता देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह एवं सहायता के आधार पर कार्य करेगा। अनुच्छेद-78(3) में यह उल्लिखित है कि यदि किसी मंत्री के द्वारा किसी मुद्दे पर विचार किया गया है, तो प्रधानमंत्री का यह कर्त्तव्य होगा कि उस मुद्दे को विचार के लिए समूचे मंत्रिपरिषद् के समक्ष रखा जाए। संविधान में 44वें संविधान संशोधन के बाद **मंत्रिमंडल शब्द** का उल्लेख किया गया, जबकि इसके पहले संविधान में मंत्रिपरिषद् का उल्लेख किया गया था। मंत्रियों की नियुक्ति संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। मंत्री के रूप में नियुक्ति के लिए किसी भी सदन का सदस्य होना आवश्यक है, यद्यपि 6 महीने तक बिना सांसद हुए कोई भी व्यक्ति मंत्री का पद धारण कर सकता है। इसका अभिप्राय है कि वह व्यक्ति मंत्री के रूप में शपथ ले सकता है, जो 6 महीने की अवधि में सांसद बन सके। उच्चतम न्यायालय ने तेज प्रकाश सिंह वाद (वर्ष-2001) में यह स्पष्ट कहा कि यदि कोई व्यक्ति 6 महीने के अंदर सांसद न बन सके, तो उसे पुनः मंत्री के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा। मूल संविधान में मंत्रिपरिषद् का आकार निर्धारित नहीं था। 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा यह निश्चित कर दिया गया कि मंत्रिपरिषद् का आकार संसद की कुल सदस्य संख्या का 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, जिसमें प्रधानमंत्री भी शामिल होगा।

मंत्रियों के नियुक्ति का आधार

भारत के संसदीय शासन में सांसद को मंत्री के रूप में नियुक्त किया जा सकता है, परंतु व्यावहारिक रूप में मंत्रियों की नियुक्ति करते समय अनेक मानदण्डों को ध्यान में रखा जाता है। मंत्रियों का चयन देश के लगभग सभी क्षेत्रों से तथा जातिगत संतुलन बनाए रखने का भी प्रयत्न किया जाता है और अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं को भी मंत्रिपरिषद् में स्थान दिया जाता है। संघीय सरकार में मंत्रियों की संख्या 82 से अधिक नहीं हो सकती। इसलिए सभी को वास्तविक प्रतिनिधित्व देना एक कठिन चुनौती होती है। वर्तमान में मंत्रियों के चयन में जाति, धर्म के अतिरिक्त उनकी योग्यता को भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है तथा मंत्रियों के फेरबदल में उनके निष्पादन को भी ध्यान में रखा गया है।

A. कैबिनेट मंत्री

ये अपने-अपने विभाग के प्रमुख होते हैं। कैबिनेट मंत्री, मंत्रिपरिषद् का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अथवा केन्द्रीय भाग है, जो महत्वपूर्ण विभागों के प्रधान होते हैं तथा मंत्रिमंडल की बैठकों में स्वाभाविक रूप में भाग लेते हैं। मंत्रिमंडल के सदस्य राजनीतिक रूप में सर्वाधिक प्रभावशाली सांसद होते हैं। कैबिनेट की अनेक समितियां होती हैं। उदाहरण के लिए, कैबिनेट की राजनीतिक समिति, नियुक्ति से संबंधित समिति, रक्षा मामलों की समिति एवं निवेश से संबंधित समिति इत्यादि।

B. राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार)

राज्य मंत्री को जब स्वतंत्र प्रभार दिया जाता है, तो राज्य मंत्री, कैबिनेट मंत्री से स्वतंत्र रूप में कार्य करता है। सामान्यतः छोटे मंत्रालयों का दायित्व राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) को सौंपा जाता है। स्वतंत्र प्रभार वाला राज्य मंत्री कैबिनेट की बैठकों में आमंत्रण के बाद भागीदारी करता है। यदि इसके मंत्रालय से संबंधित कोई विषय कैबिनेट के समक्ष है, तो इसे कैबिनेट की बैठकों में आमंत्रित किया जाता है। खेल मंत्रालय तथा कॉरपोरेट मंत्रालय जैसे छोटे मंत्रालयों में राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) का निर्माण किया जाता है। ये व्यावहारिक रूप में कैबिनेट मंत्री के समान होते हैं, परंतु कैबिनेट की बैठकों को छोटा बनाए रखने के लिए राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) के पद का निर्माण किया जाता है।

C. राज्य मंत्री

राज्य मंत्री, कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करता है। सामान्यतः गृह मंत्रालय जैसे बड़े मंत्रालयों में राज्य मंत्री की नियुक्ति होती है, जिसे मंत्रालय के किसी भी भाग का कार्यभार सौंप दिया जाता है। सामान्यतः राज्य मंत्री कैबिनेट की बैठकों में भाग नहीं लेता।

D. उप मंत्री

ये तीसरे स्तर के मंत्री होते हैं तथा ये विभागों में प्रशासनिक कार्यों का निर्वहन करते हैं, लेकिन ये मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग नहीं लेते। मंत्रिमंडलीय विचार-विमर्श में उनकी कोई भागीदारी नहीं होती। वर्तमान में उप मंत्री की नियुक्ति नहीं हो रही है।

E. संसदीय सचिव

केन्द्रीय स्तर पर सत्ताधारी सांसदों को प्रधानमंत्री द्वारा शपथ दिलाई जाती है, जिन्हें संसदीय सचिव भी कहा जाता है और राज्य स्तर पर सत्ताधारी पक्ष के चुने हुए प्रतिनिधियों को मुख्यमंत्रियों द्वारा शपथ दिलाई जाती है। संसदीय सचिव मंत्रियों की सहायता करते हैं। इसलिए इनका दर्जा लगभग मंत्रियों के समान होता है। भारत में विभिन्न राज्य सरकारों के द्वारा अनेक संसदीय सचिवों की नियुक्ति की गयी है, जिसके द्वारा संविधान में निर्धारित मंत्रिपरिषद् के आकार का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि संसदीय सचिवों को सैद्धांतिक रूप में मंत्रिपरिषद् के समूह में नहीं रखा जाता है।

संविधान में मंत्रिपरिषद् शब्द का प्रयोग किया गया है साथ ही मंत्रिमंडल शब्द का भी उल्लेख है। संसदीय विधि के द्वारा मंत्रियों के विभिन्न वर्गीकरण किए गए हैं। जिसके अनुसार कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री, राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) की नियुक्ति की जाती है। 91वां संविधान संशोधन (2003) के अनुसार मंत्रिपरिषद् की अधिकतम संख्या का निर्धारण कर दिया गया। जिसके अनुसार मंत्रिपरिषद् की संख्या लोक सभा अथवा राज्य विधान सभा की कुल सदस्य संख्या का 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, जिसमें प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री का पद भी शामिल होगा। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में मंत्रिपरिषद् की संख्या 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। मंत्रिपरिषद् के आकार को सीमित करने के कारण अनेक सरकारों के द्वारा संसदीय सचिवों की स्थापना का प्रचलन शुरू किया गया, जिससे राजनीतिक दलों के सदस्यों को अधिक से अधिक लाभ दिया जा सके।

लाभ का पद और संसदीय सचिव

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-102 एवं 191 में यह स्पष्ट उल्लिखित है कि सांसद अथवा राज्य विधान सभा का सदस्य किसी भी लाभ के पद पर नहीं होगा। संविधान में लाभ के पद को परिभाषित नहीं किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने लाभ के पद को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह पद संघ अथवा राज्य सरकार के अधीन हो तथा इस पर नियुक्त व्यक्ति को लाभ प्राप्त हो रहा हो अथवा लाभ प्राप्त करने की संभावना हो, तो इसे लाभ का पद कहा जाएगा।

संसद ने वर्ष-1959 में एक अधिनियम का निर्माण करते हुए अनेक पदों को लाभ के पद से बाहर रखा, जिसमें मंत्रियों का पद भी शामिल होगा और अधिनियम में संशोधन करते हुए योजना आयोग के उपाध्यक्ष को भी लाभ के पद से बाहर रखा गया है। इसी प्रकार विभिन्न राज्य विधान सभाओं में अधिनियम का निर्माण करके यह प्रावधान किया है कि संसदीय सचिव का पद लाभ के पद में शामिल नहीं होगा।

दिल्ली का मुद्दा

दिल्ली में अरविन्द केजरीवाल सरकार के द्वारा 21 संसदीय सचिवों की नियुक्ति की गई। यह संख्या अपने आप में ऐतिहासिक है। दिल्ली सरकार के द्वारा ऐसे विधि का निर्माण नहीं किया गया है, जिसके द्वारा संसदीय सचिव को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखा जा सके। इसलिए वैधानिक रूप में दिल्ली के 21 विधायक लाभ के पद पर बने हुए हैं। इस समस्या को देखते हुए दिल्ली विधान सभा में विधायकों की सदस्यता को बचाने के लिए एक अधिनियम का निर्माण किया, जिसे राष्ट्रपति से मंजूरी प्राप्त नहीं हुई। यदि कोई विधायक लाभ के पद पर बना हुआ है, तो इसकी सदस्यता का अंतिम निर्धारण राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल, निर्वाचन आयोग की सलाह से करेगा। इसलिए दिल्ली के 21 विधायकों के भविष्य के निर्धारण का अधिकार चुनाव आयोग के हाथों में है।

न्यायपालिका का निर्णय

वर्ष-2016 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि संसदीय सचिवों की नियुक्ति संविधान की मूल भावना के प्रतिकूल है, क्योंकि संविधान में मंत्रिपरिषद् का आकार निर्धारित कर दिया गया है और संसदीय सचिवों की नियुक्ति करके संविधान की मूल भावना का उल्लंघन किया जा रहा है। संसद अथवा विधायिका के द्वारा निर्मित कोई भी विधि संविधान की मूल प्रावधानों के विरूद्ध नहीं होनी चाहिए।

प्रधानमंत्री एवं गठबंधन सरकार

स्वतंत्रता के बाद भारत के पहले प्रधानमंत्री नेहरू अत्यधिक शक्तिशाली प्रधानमंत्री थे तथा उन्हें लोक सभा में दो-तिहाई सदस्यों का समर्थन प्राप्त था और सरदार पटेल की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी में नेहरू के नेतृत्व को चुनौती देने वाला कोई नहीं था। नेहरू के बाद इंदिरा गांधी अपने पहले कार्यकाल में कमजोर प्रधानमंत्री थीं। लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद वर्ष-1966 में जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं, तब वे राज्य सभा की सदस्या थीं तथा वर्ष-1969 में कांग्रेस के विभाजन के बाद इंदिरा गांधी सरकार लोक सभा में अन्य दलों के समर्थन पर निर्भर थी। वर्ष-1971 में इंदिरा गांधी को लोक सभा चुनाव में दो-तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ और वे शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में उभरीं। इंदिरा गांधी के शासन काल के दौरान संसदीय शासन के बजाए, प्रधानमंत्री शासन कायम था, क्योंकि प्रधानमंत्री की शक्तियां मंत्रिमण्डल के सदस्यों की तुलना में अत्यधिक शक्तिशाली हो गईं तथा प्रधानमंत्री लोक सभा से नियंत्रित होने के बजाए, लोक सभा को नियंत्रित करने लगीं, परंतु गठबंधन सरकारों के दौर में किसी भी एक दल को लोक सभा में बहुमत प्राप्त नहीं हुआ।

वास्तविक रूप से मिली-जुली सरकार का दौर वर्ष-1977 से माना जाना चाहिए, जब मोरारजी देसाई के नेतृत्व में सरकार बनी, परंतु वर्ष-1989 से भारत में वास्तविक गठबंधन सरकारों का युग प्रारंभ हुआ। गठबंधन सरकार के दौर में प्रधानमंत्री की शक्ति और प्रभाव का ह्रास हुआ। वर्ष-1989 से लेकर वर्ष-2013 तक संघ में गठबंधन सरकारों का निर्माण हुआ तथा किसी भी एक दल को लोक सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका, जिसके कारण प्रधानमंत्री अनेक दलों के सहयोग के आधार पर निर्मित हुआ। वर्ष-1991 में जब चन्द्र शेखर प्रधानमंत्री बने थे, तब उनके दल में केवल 54 सांसद थे और कांग्रेस दल के द्वारा उन्हें बाहर से समर्थन दिया गया था। वर्ष-1996 में प्रधानमंत्री देवगौड़ा कांग्रेस के बाहरी समर्थन पर निर्भर थे। वर्ष-1998 के बाद अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने, जो अनेक दलों के समर्थन से सत्ता में बने हुए थे। वर्ष-2004 से लेकर वर्ष-2013 तक डॉ. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री पद पर बने रहने के लिए अनेक दलों के समर्थन पर निर्भर थे। यदि प्रधानमंत्री राजनीतिक रूप में कमजोर है, तो वह संवैधानिक रूप में शक्तिशाली नहीं हो सकता। संसदीय शासन की मूलभूत परंपरा के अनुसार प्रधानमंत्री लोक सभा का नेता होता है, परंतु डॉ. मनमोहन सिंह लोक सभा के सदस्य ही नहीं थे।

गठबंधन सरकारों के दौर में प्रधानमंत्री पद के समानांतर यू. पी. ए. के अध्यक्ष पद का भी विकास हुआ और यू. पी. ए. की अध्यक्षा सोनिया गांधी थीं, जो कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा भी थीं। अतः राजनीतिक रूप में सोनिया गांधी शक्तिशाली थीं, जबकि संवैधानिक शक्तियां डॉ. मनमोहन सिंह में निहित थीं। संसदीय शासन सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर कार्य करता है, परंतु गठबंधन सरकारों के दौर में मंत्रिमंडल के सदस्यों के द्वारा मंत्रिमंडल के निर्णय से सार्वजनिक रूप में असहमति व्यक्त किया गया। गठबंधन सरकारों के दौर में बाहर से समर्थन देने की परंपरा का भी विकास हुआ। परिणामस्वरूप अनेक राजनीतिक दल सरकार और सत्ता का लाभ प्राप्त कर रहे थे, परंतु वे किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं थे, क्योंकि बाहर से समर्थन देने वाले दलों की भागीदारी सरकार में नहीं होती है। संसदीय शासन में मंत्रालयों के फेरबदल का अधिकार प्रधानमंत्री को होता है, परंतु गठबंधन के सहयोगियों के द्वारा मंत्री पद प्राप्त करने के लिए प्रधानमंत्री के साथ पहले ही समझौता कर लिया जाता था। यह भी उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री देश की नीति का निर्माता भी होता है, परंतु गठबंधन सरकारों के दौर में न्यूनतम साझा कार्यक्रम का पहले ही निर्माण कर लिया जाता था, जिससे प्रधानमंत्री की नीति-निर्माता के रूप में भूमिका कमजोर हो गयी। 16वीं लोक सभा में वर्ष-1984 के बाद पहली बार किसी भी दल को संसद में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ एवं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में उभार हुआ। इंदिरा गांधी के बाद नरेन्द्र मोदी का उभार सबसे शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में हुआ है और भारत में पुनः प्रधानमंत्री शासन का उदय हुआ एवं प्रधानमंत्री के नाम पर लोक सभा चुनाव लड़ा गया। प्रधानमंत्री ने अपने सबसे करीबी सहयोगियों राजनाथ सिंह, अरूण जेटली, सुषमा स्वराज को महत्वपूर्ण विभाग सौंपे तथा आरंभ में मंत्रिमण्डल का आकार भी अत्यधिक छोटा रखा गया, जिससे प्रधानमंत्री कार्यालय की शक्तियों में निर्णायक वृद्धि हुई। प्रधानमंत्री ने विदेश यात्राओं में महत्वपूर्ण नीतियों की घोषणाएं कीं और विदेश मंत्री के रूप में सुषमा स्वराज की भूमिका अत्यधिक गौंड़ प्रतीत होती है। प्रधानमंत्री के द्वारा अपने दल के सांसदों पर भी प्रभावी नियंत्रण कायम है।

उप-प्रधानमंत्री

भारतीय संविधान में उप-प्रधानमंत्री के पद का उल्लेख नहीं है। इसलिए तकनीकी रूप में उप-प्रधानमंत्री कैबिनेट मंत्री है, परंतु राजनीतिक कारणों से उप-प्रधानमंत्री के पद का निर्माण किया गया। सरदार पटेल भारत के पहले उप-प्रधानमंत्री थे, उसके बाद वर्ष-1967 में उप-प्रधानमंत्री पद का पुनः निर्माण हुआ, जब मोरारजी देसाई इंदिरा गांधी के शासन काल के दौरान उप-प्रधानमंत्री थे। उप-प्रधानमंत्री की सभी शक्तियां एक कैबिनेट मंत्री की शक्तियां होती हैं। उदाहरण के लिए, अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व कार्यकाल में लाल कृष्ण आडवाणी गृह मंत्री थे, जिन्हें उप-प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया गया। उप-प्रधानमंत्री का पद शक्तिशाली प्रधानमंत्रियों के दौर में अनुपस्थित रहा। उप-प्रधानमंत्री की नियुक्ति ज्यादातर कमजोर प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल में हुई, जिन्हें या तो अपने दल में पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं था अथवा प्रधानमंत्री के दल का लोक सभा में पूर्ण बहुमत नहीं था।

राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के बीच संबंध

भारतीय संविधान में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान तथा प्रधानमंत्री कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान है। संविधान में समूची कार्यपालिकीय शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं, परंतु इसका व्यावहारिक प्रयोग प्रधानमंत्री के द्वारा ही किया जाता है। राष्ट्रपति अपने कार्य मंत्रिपरिषद् एवं उसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री की सहायता एवं सलाह के अनुसार करता है। संविधान निर्माताओं ने यह कल्पना की है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के अभाव में कोई कार्य नहीं करेगा। भारत में इस मुद्दे पर वर्ष-1960 में एक बहस आरंभ हो गयी, जब तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि संविधान में कोई भी ऐसा स्पष्ट प्रावधान नहीं है, जो राष्ट्रपति को सदैव मंत्रिपरिषद् की सलाह एवं सहायता के आधार पर कार्य करने के लिए बाध्य करे।

उच्चतम न्यायालय के द्वारा राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंधों को शमशेर सिंह वाद (वर्ष-1955) में स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद-53 के अनुसार, राष्ट्रपति एक संवैधानिक प्रधान हैं तथा वह मंत्रिपरिषद् की सलाह और सहायता के आधार पर कार्य करता है, (अनुच्छेद-74(1))। न्यायपालिका के अनुसार, इन दोनों प्रावधानों को एक साथ देखने की आवश्यकता है, अलग-अलग नहीं। अतः संविधान में राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् के अलावा कार्य नहीं कर सकता तथा शासन की वास्तविक शक्तियां प्रधानमंत्री के हाथ में है। इसलिए राष्ट्रपति को संविधान से विवेकाधीन शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद राष्ट्रपति की संवैधानिक शक्तियों को सीमित करने का प्रयत्न किया गया। इंदिरा गांधी ने 24वां संविधान संशोधन, 1971 प्रस्तुत करते हुए प्रावधान किया कि राष्ट्रपति किसी संविधान संशोधन विधेयक पर वीटो नहीं करेगा। बाद में इंदिरा गांधी ने 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा यह प्रावधान किया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् की सहायता एवं सलाह के अनुसार कार्य करेगा, जिससे यह विवाद समाप्त हो गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् के सलाह के अलावा कार्य कर सकता है, अथवा नहीं। वर्ष-1977 में जनता पार्टी सरकार ने 42वें संविधान संशोधन, 1976 के प्रावधान में परिवर्तन नहीं किया, परंतु राष्ट्रपति को एक अतिरिक्त शक्ति प्रदान की गई, जिसके अनुसार राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् की सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए भेज सकता है, परंतु यदि मंत्रिपरिषद् दोबारा इसे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करे, तो राष्ट्रपति को विधेयक पर हस्ताक्षर के अलावा कोई विकल्प नहीं है। यद्यपि इन संशोधनों के बावजूद व्यावहारिक रूप में **राष्ट्रपति को निम्नलिखित स्वविवेक की शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं** -

- जब प्रधानमंत्री की अचानक मृत्यु हो जाए, तो वह स्वविवेक से नए प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है।
- जब सरकार अल्पमत में हो जाए तथा लोक सभा अपना विश्वास खो दे, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य नहीं करेगा, बल्कि स्वविवेक के अनुसार कार्य करेगा।
- यदि सरकार बनाने के लिए किसी दल के पास स्पष्ट बहुमत न हो, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति स्वविवेक से किसी दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करते हैं। व्यावहारिक रूप में राष्ट्रपति द्वारा वर्ष-1996 के बाद से सबसे बड़े दल के स्थान पर सबसे बड़े गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है।
- किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेजने के मामले में राष्ट्रपति स्वविवेक का प्रयोग करता है।
- यदि मंत्रिमण्डल सदन में विश्वास मत सिद्ध न कर सके, तो राष्ट्रपति लोक सभा को विघटित करने में स्वविवेक का प्रयोग करता है।

प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य

संविधान में प्रधानमंत्री का राष्ट्रपति के प्रति कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है, **जो निम्नलिखित हैं** -

- प्रधानमंत्री का यह कर्त्तव्य होगा कि वह संघ के प्रशासन और विधान से संबंधित मंत्रिपरिषद् के सभी निर्णयों को राष्ट्रपति को संप्रेषित करे, (अनुच्छेद-78(1))।
- संघ के प्रशासन और विधान से संबंधित ऐसी सूचनाओं को प्रदान करे, जिसकी राष्ट्रपति मांग करे, (अनुच्छेद-78(2))।
- यदि किसी मुद्दे पर एक मंत्री ने विचार न किया हो, तो राष्ट्रपति ऐसे मुद्दों को मंत्रिपरिषद् के समक्ष रखवा सकता है, (अनुच्छेद-78(3))।

राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के मध्य दूसरा बड़ा विवाद प्रधानमंत्री के कर्त्तव्य से जुड़ा हुआ था। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह तथा प्रधानमंत्री राजीव गांधी के बीच इस संबंध में सबसे बड़ा विवाद उत्पन्न हुआ, जिसमें संवैधानिक संकट के उत्पन्न होने की आशंका व्यक्त की गयी थी। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह का आरोप था कि प्रधानमंत्री उन्हें संघ शासन से संबंधित प्रशासन एवं विधायन की सूचना नहीं दे रहे हैं। अत: प्रधानमंत्री अपने संवैधानिक कर्त्तव्यों का उल्लंघन कर रहे हैं। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने तर्क दिया कि प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति को कोई सूचना देने के लिए बाध्य नहीं है, बल्कि प्रधानमंत्री जिन सूचनाओं को उचित समझेंगे, वही सूचनाएं राष्ट्रपति को संप्रेषित करेंगे। प्रधानमंत्री के अनुसार, कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियां प्रधानमंत्री में निहित हैं। इसलिए सूचना को देने का निर्धारण भी प्रधानमंत्री करेगा। प्रधानमंत्री के अनुसार, वह गोपनीयता की शपथ भी लेता है, जबकि राष्ट्रपति गोपनीयता की शपथ नहीं लेता। इसलिए सूचना देने की शक्ति प्रधानमंत्री में निहित है। वर्ष-1990 के बाद भारतीय शासन में गठबंधन सरकारों का दौर आरंभ हुआ, जिसमें प्रधानमंत्री की शक्तियां कमजोर हुईं। परिणामस्वरूप राष्ट्रपति ने प्रभावी शक्तियों का प्रयोग किया। भारतीय राष्ट्रपति का निर्वाचन अखिल भारतीय रूप में होता है तथा वह संविधान की रक्षा का शपथ लेता है। इसलिए व्यावहारिक रूप में वह प्रभाव का प्रयोग करने में सक्षम होता है। वर्तमान में राष्ट्रपति के निर्वाचन में किसी एक दल का प्रभाव नहीं है, बल्कि राष्ट्रपति का निर्वाचन विभिन्न दलों के बीच आम सहमति के आधार पर हो रहा है तथा वर्तमान में राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के बीच सहयोगपूर्ण संबंध बने हुए हैं।

.....

Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR